'शील' जीवन की सुन्दर उपासना है

☐ श्रीमती अलका प्रचण्डिया 'दीति'
[एम. ए. (संस्कृत), एम. ए. (हिन्दी), रिसर्चस्कॉलर]

'शील' मानवजीवन का अमूल्य आभूषण है। वह भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। चारों आश्रमों और चारों वर्णों में शील का प्राधान्य है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, सेवक-सेविका और गृहस्थ सभी के लिए शील का पालन परमावश्यक है। इसके आचरण से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सर्वतोमुखी विकास होता है। शील शरीर, मन और आत्मा को बलवान् बनाता है। बलहीन व्यक्ति को आत्मा के दर्शन नहीं होते। इसके लिए वज्रऋषभ-नाराच संहनन की अपेक्षा होती है और वह शील से आती है। 'शील' से जीवन में शिवत्व मुखर होता है। सुन्दरता खिलती है और जीवन सत्यमय हो जाता है।

भारतीय दर्शन शरीर को आत्मा का मंदिर मानते हैं। यह ठीक है कि शरीररूपी मंदिर की भी सार-सम्भाल होनी चाहिए। लेकिन आत्मदेवता की पूजा के बदले आज शरीर-पूजा का भाव अधिक बढ़ गया है। आत्मपूजा शील पालन से सम्भव है। वस्तुतः शरीर-सत्कार द्रव्यपूजा है और शील भावपूजा है। कहते हैं-ऐश्वर्य का आभूषण सौजन्य है। शौर्य का आभूषण वाणी पर संयम है। ज्ञान का आभूषण उपशम है तो श्रुत का विनय। तपस्या का आभूषण अक्रोध है तो समर्थ का क्षमा। धर्म का आभूषण निश्छलता है लेकिन इन आभूषणों का आभूषण 'शील' है। व्यक्ति, परिवार, समाज, नगर, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व सभी तो शीलधर्म से अनुप्राणित हैं। जहाँ शील मुखर है वहाँ प्यार परस्पर में पनपता है। विश्वास टिकता है। मनोबल पैदा होता है। सुख और शांति का माहौल बन जाता है। शील के माहात्म्य में कवि-स्वर गूंज उठते हैं—

शील रतन सबसे बड़ो, सब रत्नों की खान।
तीन लोक की संपदा रही शील में आन॥

शील जीवन का ऊर्ध्वारोहण है। वह सहस्राक्ष है, वह देखता नहीं, स्वयं दिख जाता है। शील का सागर अतल, गहन होता है। जितना-जितना इसमें अवगाहन किया जाता है उतना-उतना आनंद बिखरता जाता है। शील की गंध के समान दूसरी गंध कहाँ होगी? दूसरी गंध तो जिधर हवा का रुख होता है उधर ही बहती है पर शील की गंध ऐसी है जो विपरीत हवा में भी उसी तरह से बहती है जैसी प्रवाह में बहती है-यथा—

सीलगंधसमो गंधो कुतो नाम भविष्यति।
यो समं अनुवाते च परिवाते च वायति॥

(विसुद्धिमग्ग, परि. १)

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है
www.jainelibrary.org
Jain Education International For Private & Personal Use Only

यदि किसी को स्वर्ग के उच्चस्थल पर पहुँचना है तो शील सदृश कोई सोपान नहीं है। निर्वाणनगर में पहुँचने का शील एक सुन्दर यान है-यथा—

सग्गारोहणसोपानं अं जं सीलसमं कुतो।
द्वारं वा पन निब्बान-नगरस्स पवेसने॥

(विसुद्धिमग्ग परि. १)

भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल इतिहास के पन्ने शील-सिक्त स्त्री-पुरुषों की कहानी कहते हैं। चाहे दमयंती हो या चन्दनबाला। ब्राह्मी हों या सुन्दरी। हनुमान हों या फिर हों सेठ सुदर्शन। सभी शील की प्रभावना से आज भी स्मरणीय हैं। शीलवान् के समक्ष देवता दास बन जाते हैं। सिद्धियाँ सहचरी बन जाती हैं। लक्ष्मी उनकी दृष्टि का अनुगमन करने लगती है। शील-पुरुष मन से जिस बात की कामना करते हैं वह उन्हें सहज सुलभ हो जाती हैं। कुरूप से कुरूप और बेडौल से बेडौल व्यक्ति भी शील के कारण पूज्य हो जाता है। सचमुच, शील में अपूर्व बल है। अनुभव की आँच में तपे हुए भर्तृहरि के उद्‌गार शील की महत्ता कह उठते हैं, यथा—

बह्निस्तस्य जलायते, जलनिधिः कूल्यायते तत्क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्याङ्गेऽखिल लोकवल्लभतरं शीलं समुन्मीलति॥

अर्थात् जिसके अंग-अंग में निखिल लोक का अतिवल्लभ शील ओतप्रोत है उसके लिए अग्नि जल बन जाती है। समुद्र छोटी नदी बन जाता है। मेरुपर्वत छोटी-सी शिला बन जाता है, सिंह शीघ्र ही हिरण की तरह व्यवहार करने लगता है। सर्प फूल की माला बन जाता है। विष अमृत हो जाता है।

'शील' शब्द बड़ा व्यापक है। इसमें अनेक अर्थ समाहित हैं। बृहत् हिन्दी कोशकार, पृष्ठ १३६१, पर शील का अर्थ मन की स्थायी वृत्ति, स्वभाव और तटस्थ व्यवहार स्वीकारते हैं। संस्कृत 'शब्दार्थकौस्तुभ' पृष्ठ ८४७ में अच्छा स्वभाव, चाल-चलन और सदाचार या सदाचरण के अर्थ में 'शील' शब्द संगृहीत है। सर्वमान्य प्रचलित अर्थ सदाचार या सच्चरित्रता है। सदाचार के गर्भ में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह वृत्ति का समावेश हो जाता है। इस दृष्टि से शील में पाँचों व्रत समाहित हो जाते हैं। बौद्धधर्म में ये पंचशील के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में कहा गया है—यथा—"जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं, सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती, मुत्ती गुत्ती तहेव य।" 'तत्त्वार्थसूत्र' में "व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्।" अर्थात् ५ अणुव्रत और ७ शील (३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत) के क्रमशः पांच-पांच अतिचार होते हैं, ऐसा कहने से 'शील' शब्द की व्यापकता मुखर होती है। इस प्रकार शील का अर्थ ध्वनित होता है—जीवन में मर्यादाओं में रहना। इन्द्रियों और मन की सुन्दर आदतें या सुस्वभाव अथवा सद्व्यवहार। जैनदर्शन में 'शीलं ब्रह्मचर्यम्' अर्थात् 'शील' को ही ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य में सच्चरित्रता के लिए आवश्यक गुणों का समावेश हो जाता है। जैसे पर्वतों में मेरु पर्वत और देवों में इन्द्रदेव सबसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़ा है वैसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्य का व्रत बड़ा है। इसकी आराधना से सभी व्रतों की अराधना हो जाती है। तप, विनय, संयम, क्षमा, निर्लोभता तथा गुप्ति की साधना हो जाती है। सचमुच, यह व्रतों का सरताज है।

पाँचों इन्द्रियों का निग्रह तथा इनका आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है। जैनेन्द्र-सिद्धान्तकोश, भाग ३, पृष्ठ १९९ पर आत्मा के सद्भाव में परिणति के लिए आचरण 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है, यह उल्लिखित है। भगवती आराधना, मूल, ८७८ पर देहासक्ति से मुक्त व्यक्ति की जो चर्या है वही ब्रह्मचर्य है, ऐसा स्वीकारा है। वस्तुतः 'ब्रह्म' के तीन मुख्य अर्थ हैं—वीर्य, आत्मा, विद्या। 'चर्यः शब्द भी तीन अर्थ कहता है—रक्षण, रमण, अध्ययन। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ वीर्यरक्षण, आत्मरमण और विद्याध्ययन। वीर्यरक्षा के लिए स्पृश्य के अतिरिक्त दृश्य, श्रव्य, खाद्य और घ्राणीय पदार्थों में विवेकपूर्ण संयम करना या कामोत्तेजक पदार्थों को छोड़ना ब्रह्मचारी के लिए लाजिमी है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य उत्तम खाद है जिससे सद्गुणों की खेती लहलहाने लगती है। 'मनुस्मृति' में ब्रह्मचारी अर्थात् शीलवान् के लिए कई बातों का परहेज बताया है, यथा—

वर्जयेन्मधु मासं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णो-रुपानच्छत्रधारणम्।
शुक्तानि यानि सर्वाणि, प्राणिनां चैव हिंसनम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।
द्यूतञ्च जनवादञ्च परीवादं तथानृतम्।
स्त्रीणाम्प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥

अर्थात् ब्रह्मचारी मद्य, मांस, सुगन्धित पदार्थ, माला, स्निग्ध रस का अत्यधिक सेवन, स्त्रीसंग, तैल आदि की मालिश या पीठी आदि लगाने, आँखों में अञ्जन (काजल) डालने, पैरों में जूते पहनने, छत्र धारण करने, सभी प्रकार के अश्लील दृश्य, अश्लील गाने-बजाने या नाचने का त्याग करे। इसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, प्राणियों की हिंसा, जुआ, निन्दा-चुगली, असत्य, स्त्रियों की ओर विकारी दृष्टि से देखने, आलिंगन करने या टक्कर लगाकर चलने का भी त्याग करे।

आचार्यों ने 'शील' को दो रूपों में विभक्त किया है—(i) पूर्ण शीलव्रती (ब्रह्मचारी) (ii) मर्यादित शीलव्रती (ब्रह्मचर्याणुव्रती)। साधु-साध्वी पूर्ण शीलव्रती होते हैं। वह मन-वचन-काय से स्वयं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं औरों को ब्रह्मचर्य-पालन की प्रेरणा देते हैं, प्रोत्साहन देते हैं। श्रावकों में दो प्रकार के शीलव्रती कहे गए हैं। कई श्रावक उम्र ढल जाने पर सपत्नीक अथवा पति या पत्नी दोनों में से किसी एक के देहान्त हो जाने पर स्वयं गृहस्थ जीवन में रहकर पूर्ण ब्रह्मचर्य (शील) पालन करने की प्रतिज्ञा लेते हैं। कई कुमारिका बहिनें या कुँवारे भाई भी गृहस्थ जीवन में आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं और सेवाकार्य में अपना जीवन ओतप्रोत कर देते हैं। पर ऐसे व्यक्तियों की आज संख्या विरल है। गृहस्थ जीवन में शीलव्रती बनने के लिए स्वपत्नी-संतोष और परस्त्री-विरमण व्रत वचन और काया से अथवा काया से पालने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। शील कुल की शोभा बढ़ाता है।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान युग में शीलपालन प्रश्न बन गया है। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव जो बढ़ गया है और भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन होता जा रहा है। तथापि माता-पिता, बुजुर्ग, गुरु, समाज-संस्कर्ता सेवक जरा सतर्कता से काम लेवें, व्यवहार, आचार और संस्कार का परिष्कार करें तो शीलरत्न की ज्योति अखण्डित-प्रज्वलित रहेगी। वह किसी भी भय, प्रलोभनों के झंझावातों से बुझेगी नहीं। शील के संस्कार घर-घर में मुखर होंगे। धरा पर स्वर्ग साकार होगा। 'दोहापाहुड' का 'शीलं मोक्खस्स सोवाणं' आर्ष वाक्य प्रशस्त होगा। आचार्य हेमचन्द्र शील-लाभ को उजागर करते हुए कहते हैं—

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढसंहनना नराः ।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन करने से मनुष्य दीर्घायु, तेजस्वी और महापराक्रमशाली होते हैं, उनके शरीर का डीलडौल एवं उनके शरीर के अवयव परस्पर गठे हुए और मजबूत होते हैं। ब्रह्मचर्य राख से प्रच्छन्न आग है। जिसके भीतर ज्योति है लेकिन ऊपर राख। यही तथ्य हिन्दी के फक्कड़ कवि कबीर के स्वर में भी भास्वर हुआ। यथा—

"बाहर से तो कछु न दीखै,
भीतर जल रही जोत।"

'शील' की प्रभावना से व्यक्ति शक्तिधर श्रुतिधर, और स्मृतिधर बन सकता है। सदाचरण के अर्घ्य से, शील की अर्चना से व्यक्ति का ही नहीं, समाज का, समाज का ही नहीं प्रान्त, राष्ट्र और विश्व का अभ्युदय सम्भव है। वस्तुतः 'शील' जीवन का मुकुटमणि है। वह जीवन की सुन्दर उपासना है।

—मंगलकलश
३९४, सर्वोदयनगर, आगरारोड,
अलीगढ़-२०२००१ (उ. प्र.)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org